





विद्यार्थियों के लिए—

हिन्दी नाट्य-कला

UNIVERSITY OF DELHI
LIBRARY
INDIA
सम्पादन—

श्री० पद्मनाभ एम० ए०, एल० एल० दी०

हिन्दी भवन
जवाहरलाल नेहरू

प्रकाशक }
संस्कार }

वर्ष १९६६

{ अंक २ }
{ अंक २ }

भूमिका

विशेषतः हिन्दी नाट्यकला और सामान्यतया सम्पूर्ण भारत-वर्ष की नाट्यकला से सम्बन्ध रखने वाले निम्नलिखित इतिहास में एकत्र किए गए हैं। वर्तमान हिन्दी साहित्य में नाटकों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। हिन्दी लेखकों में भी नाटकों की लोकप्रियता बढ़ रही है। पंजाब में हिन्दी साहित्य का अंग विशेष लोकप्रिय हो रहा है। उसका कुछ श्रेय स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल के अमर नाटकों के हिन्दी अनुवाद को है और कुछ श्रेय पंजाब यूनिवर्सिटी को। पंजाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी परीक्षाओं में इन समय नाटक नियुक्त हैं। इन बातों ने नाटकों के महत्व को बहुत बढ़ा दिया है।

यह एक विस्तार की बात है कि नाटकों की इतनी लोकप्रियता के रहते भी हिन्दी में नाट्य-कला के सम्बन्ध की पुस्तकों का लगभग अभाव ही है। जहाँ मंचार की अन्य सहस्र भाषाओं में नाट्यकला के सम्बन्ध में सैद्धों प्रमाणाधिक पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं, वहाँ हिन्दी में इस विषय की गिनती चुनी पुस्तकें ही प्राप्त होंगी। सम्भवतः यही कारण है कि पंजाब यूनिवर्सिटी हिन्दी



हिन्दी नाट्यकला पर स्वभावतः संस्कृत नाटकों का बहुत गहरा प्रभाव है। यह कहा जाता है कि हिन्दी नाट्यकला की इमारत ही संस्कृत नाट्यकला की नींव पर खड़ी हुई है। उसके बाद, विशेषतः बीसवीं सदी की दूसरी दशक में हिन्दी नाट्यकला पर बंगाली नाटकों का बहुत भारी प्रभाव पड़ा। बंगाली नाट्यकला गेक्सपीयर की शैली में प्रभावित हुई है, अतः इनके द्वारा हिन्दी नाट्यकला पर भी गेक्सपीयर की शैली का प्रभाव पड़ा। आजकल हिन्दी नाट्यकला पर अर्वाचीन यूरोपियन, विशेषतः, अंगरेज़ी नाट्यकला का प्रभाव पड़ रहा है। इस संदर्भ में मैंने इन सब प्रभावों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है।

'रूपक का विकास' शीर्षक अध्याय में भारत में नाट्यकला के विकास के सम्बन्ध में संक्षेप में लिखा गया है। बाबू खामसुन्दर दाम तथा उनके मित्र सं० पीताम्बर दत्त का यह लेख बहुत मनोरंजक रंग में लिखा गया है। इनके बाद विश्वनाथिन्धु में नाटक तथा संस्कृत नाटक के सम्बन्ध में दो अध्याय दिए गए हैं।

बंगाली नाटकों का हिन्दी नाटकों पर जो प्रभाव पड़ा है, उस की महत्ता में इनकार नहीं किया जा सकता। अतः श्री द्विवेन्द्रनाथ राय तथा नारायण खंडोकाजी जैसे विख्यात और प्रभावशाली व्यक्तियों के नाटकों का संक्षिप्त वर्णन इस संदर्भ में देना आवश्यक ही था।

अर्वाचीन हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में श्री बालदेवु द्विवेन्द्र

गए हैं। पश्चिम भारत के नाटकों और आधुनिक भारतीय रंगमंच पर भी दो संक्षिप्त लेख दिए गए हैं।

नाट्यकला के सन्दर्भ में अन्य अनेक उपयोगी लेखों के अतिरिक्त इस संग्रह के अन्त में रसों के सन्दर्भ में भी श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा लिखित एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेख दिया गया है। इन लेख में शृङ्गार रस की महत्ता विशेष रूप से प्रतिपादित की गई है।

इसमें मन्देह नहीं कि हमारे पाठ्यक्रम में अश्लीलता की जरा भी स्थान नहीं देना चाहिए। आजकल जनता इस सन्बंध में पर्याप्त जागरूक है, यह बात अभिनन्दनीय है। परन्तु मुझे भय है कि जहाँ इसी उल्काह में हम लोग दूसरे किनारे पर न पहुँच जायें। हमें अश्लीलता और सुन्दरता में गोंडारूपन और शिष्ट शृङ्गार में तथा धामनी और निष्काम प्रेम में अन्तर करना चाहिए। इन सब को एक ही तराजू पर तोलना साहित्य की दृष्टि से करना होगा।

मैं इन सम्पूर्ण विठान लेखकों का कृतज्ञ हूँ, जिनके लेखों का नार इस संग्रह में दिया गया है। मुझे आशा है कि इन संग्रह का सन्तुष्टि आदर होगा।

दरैन्द्राश्रम सिट्टोट, गिन्ना }
१२ नवम्बर १९३७ }

पेदव्यास



हिन्दी नाट्य-कला

— ६ —

रूपरत्न का विकसन

(दामू श्यामसुन्दरदास)

दार्जिलिंग-मनुष्य की प्रारम्भिक शिक्षा का आधार अनुष्ठान है। यह अनुष्ठान मनुष्य की भाषा, उसके चेहरे और व्यवहार की शिक्षा के लिये अनिवार्य माध्यम है। यह माध्यम केवल मनुष्यों के लिये ही नहीं बल्कि जानवर जीवों के व्यवहार के लिये भी अत्यन्त ही है। इसी अनुष्ठान की सहायता प्रकृति, युक्त परिस्थिति और अनुष्ठान होकर, समाज के अन्तर्गत व्यक्तियों के व्यवहार तथा ही परिचित हो जाती है और उनका स्वभाव किसी निश्चित प्रकार की स्थिति बनना औरत मोक्ष-मार्ग बनना होता है। यही समाजगत व्यक्तियों के व्यवहारों में एक कार्य नहीं है कि समाजगत व्यक्तियों के अनुष्ठान की प्रेरणा की गई है। इसका उद्देश्य केवल समाजियों के व्यवहारों में है, जिससे समाज-सुख-सुखी का कार्य सिद्ध हो। समाज-सुख के लिये समाज अपने व्यवहारों का कार्य है। इन

जिसमें अभिनय करने वाला किसी के रूप, हाव-भाव, वेश-भूषा, चालचल आदि का ऐसा अच्छा अनुकरण करे कि उसका और वास्तविक व्यक्ति का भेद प्रत्यक्ष न हो सके। अब इस अर्थ में साधारणतः 'नाटक' शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द संस्कृत की 'नट' धातु से बना है जिसका अर्थ सात्विक भावों का प्रदर्शन है। भिन्न भिन्न देशों में इस कला का विकास भिन्न-भिन्न रूपों और स्वरूपों में हुआ है। परन्तु एक बात जो सभी नाटकों में समान रूप से पाई जाती है वह यह है कि सभी नाटकों में पात्र नाट्य के द्वारा किसी न किसी व्यक्ति के व्यापारों का अनुकरण या उनकी नकल करने हैं।

उत्पत्ति—मनुष्य स्वभाव से ही ऐसा जीव है जो सदा यह चाहता है कि मैं अपने भाव और विचार दूसरों पर प्रकट करूं। वह उन्हें अपने अन्तःकरण में छिपा रखने में अनमर्थ है। उसे बिना उन्हें दूसरों पर प्रकट किये चैन नहीं मिलता। अतएव अपने भावों और विचारों को दूसरों पर प्रकट करने की इच्छा मानव-प्रवृत्ति का एक अनिवार्य गुण है। मनुष्य अपने भावों और विचारों को इङ्गितों या वाणी द्वारा अथवा दोनों की सहायता से प्रकट करता है। भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने की ये रीतियाँ वह मानव-समाज में मिल कर सींगर लेता है। किसी उत्सव के समय वह इन्हीं भावों को नाच-गा कर प्रकट करता है। वाणी और इंगित के अतिरिक्त भावों और विचारों के अभिव्यक्तन का एक तीसरा प्रकार अनुकरण या नकल है। वास्तविकता से ही

होते थे। उन देवताओं में से कुछ तो कल्पित होते थे और कुछ ऐसे वीर-पूर्वज होते थे, जिनमें किसी देवता की कल्पना कर ली जाती थी। ऐसी दशा में उन देवताओं के जीवन में से रूपक की यथेष्ट सामग्री निकल आती थी। इसी प्रकार के उत्सव और रूपक घरना और जापान आदि में भी हुआ करते थे। फसल हो चुकने पर तो ऐसे उत्सव और रूपक होते ही थे, पर कहीं कहीं फसल घेने के समय भी इसी प्रकार के उत्सव और रूपक हुआ करते थे। इन उत्सवों पर देवताओं से इस बात की प्रार्थना की जाती थी कि खेतों में यथेष्ट धन-धान्य उत्पन्न हो। भारत में तो अब तक फसलों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के पूजन और उत्सव आदि प्रचलित हैं, जिनमें से होली का त्योहार मुख्य है। यह त्योहार गेहूँ आदि की फसल हो जाने पर होता है और उसी से सम्बन्ध रखता है। अब भी होली के अवसर पर इस देश में नृत्य, गीत आदि के साथ नाच स्वांग निकलने हैं, जो बाल्य में रूपक के पूर्व रूप ही हैं! यद्यपि आजकल यह उत्सव श्रमलीलता के संयोग से बिलकुल भ्रष्ट हो गया है, पर इनसे हमारे कथन की पुष्टि में कोई बाधा नहीं पड़ती।

वीर-पूजा—प्राचीन काल में जिस प्रकार धन-धान्य आदि के लिये देवताओं का पूजन होता था, उसी प्रकार पूर्वजों और बड़े-बड़े ऐतिहासिक पुरुषों का भी पूजन होता था। उन पूर्वजों-और ऐतिहासिक पुरुषों के उपलक्ष्य में बड़े-बड़े उत्सव भी होते थे, जिनमें इन उत्सवों में

, की जानी थी अथवा



नाचने-गाने का नारा कान खिरी ही करती हैं, पर रामायण के नाटक में केवल पुत्र ही भाग लेते हैं; उसमें कोई स्त्री नहीं सम्मिलित होने पाती ।

भारतीय नाट्य-साहित्य की सृष्टि—यह तो हुई नाट्य की ठेठ उत्पत्ति और विकास की बात । अब हम संक्षेप में यह बतलाना चाहते हैं कि संसार के भिन्न भिन्न देशों में उनके नाट्य-साहित्य की सृष्टि कब और कैसे हुई । यह तो एक स्वतः सिद्ध बात है कि नाट्य की उत्पत्ति गीति-काव्यों और कथोपकथन से हुई । अब यदि हमें यह ज्ञात हो जाय कि इन गीति-काव्यों और कथोपकथनों का आरम्भ सबसे पहले किस देश में हुआ, तो हमें अनायास ही प्रमाण मिल जायगा कि संसार के किस देश में सबसे पहले नाट्य-कला की सृष्टि हुई । इस दृष्टि से देखते हुए केवल हमें ही नहीं बरन् संसार के अनेक बड़े बड़े विद्वानों को भी विश्वास होकर यही मानना पड़ता है कि जहाँ भारतवर्ष और अनेक जातों में आदि-कथा और पद्य-प्रदर्शक था, वहाँ रुनकों, गीति-काव्यों और कथोपकथन संबन्धी साहित्य उत्पन्न करने में भी वह प्रथम और अग्रगण्य था । भारतियों का परंपरागत विश्वास है कि श्रद्धा में वेदों में नार लेकर नाटक की सृष्टि की थी । वास्तविक बात यह है कि नाटक के मूल-मूल, जो समय पाकर नाटक के रूप में विकसित हो जाते हैं, वेदों में स्पष्ट रूप से पाए जाते हैं । हमारे वेद संसार का सबसे प्राचीन साहित्य हैं । उनमें भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा प्राचीन ऋग्वेद है ।

जड़भूति साधुओं का उल्लेख करते हुये एक साधु की कथा दी है। एक बार एक साधु कहीं से बहुत देर कर के आया। गुरु के पूछने पर उसने कहा कि मार्ग में नदों का नाटक हो रहा था, वही देखने के लिये मैं ठहर गया था। गुरु ने कहा कि साधुओं को नदों के नाटक आदि नहीं देखने चाहिए। कुछ दिन पीछे उस साधु को एक बार फिर अपने आश्रम को आने में विलग्न हो गया। इस बार गुरु के पूछने पर उसने कहा कि एक स्थान पर नदियों का नाटक हो रहा था, मैं वही देखने लग गया था। गुरु ने कहा कि तुम बड़े जड़युद्धि हो। तुम्हें इनकी भी समझ नहीं कि जिन नदों का नाटक देखने के लिये निषेध किया जाय, उसके लिये नदियों का नाटक देखना भी निषिद्ध है। इन सब बातों के उल्लेख से हमारा यही तात्पर्य है कि आज से लगभग टाई-तीन हजार वर्ष पहले भी इस देश में ऐसे ऐसे नाटक होते थे, जिन्हें सर्वसाधारण बहुत मूढ़ों में और प्रायः देखा करते थे। कौदिररम्भाभिस्तार सरीखे नाटकों का अभिनय करना जिनमें पैलान के दरम दिग्गये जते हों और ऐसी रङ्गशालाएँ बनाना जिनमें राजा रथ पर आते और आकाश-मार्ग में जाने हों (दे० विक्रमोद्देशीय) मूढ़ नहीं है। नाट्य-कला को उन्नति की इस सीमा तक पहुँचने में सैकड़ों हजारों वर्ष लगे होंगे। कौदिररम्भाभिस्तार के संबंध में हरिवंश पुराण में लिखा है कि उसने प्रद्युम्न ने नल-कृष्ण का, शूर ने रावण का, साँव ने विदूषक का, गङ्ग ने परिषार्थ का और ननोवती ने रम्भा का रूप धारण किया था और सारे नाटक का अभिनय इतनी उद्यमता के साथ किया गया था कि उसे देख कर दण्डनाभ आदि दानव बहुत ही प्रसन्न

है, तितकारी उपदेशों को देनेवाला है और पैर, थोड़ा और लुप
आदि उत्पन्न करने वाला है, १-५६।”

“लुप्त, अममयं जोकार्त्तं तथा तपस्वियों को भी ममय
पर शान्ति प्रदान करने वाला यह नाट्य मैंने बताया है, १-८०।”

“यह नाट्य धर्म, यश, आयु को हृष्टि करने वाला, खान
करने वाला, हृष्टि बढ़ाने वाला और संसार को उपदेश देने वाला
होगा, १-८१।”

“न बोधं ऐसा वेद है, न मित्य है, न विद्या है, न बला है, न
योग है, न धर्म है जो इस नाट्य में नहीं दिखाया जा
सकता, १-८२।”

“यह नाट्य वेद, विद्या, इतिहास तथा अर्थशास्त्र का मन्त्रण
करनेवाला तथा संसार में विरोध करने वाला होगा, १-८३।”

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नाट्य का धारणा
केवल मनन की विनमृति को उत्पन्न करने तथा लक्ष्य
इंद्र प्रिया को उत्पन्न करना नहीं बल्कि धर्म, आयु और
यश को हृष्टि करना है। भारतीय नाट्यशास्त्र तथा नाट्य-
साहित्य की इस विवेचना है।

बहुसंख्यी का नाट्य—कहना स्पष्ट है कि नाट्य में यह और
यह का विवेचन करना चाहते हैं किन्तु नाट्य को उत्पन्न
और उन्हें उत्पन्न कर यह विवेचन प्रकाश करने की संभावना
है। एतदर्थ से से नाट्य में बहुसंख्यी का नाट्य होगा।

... के विवेचन, इनमें और उत्पन्न

है, हितकारी उपदेशों को देनेवाला है और धैर्य, शीड़ा और सुख आदि उत्पन्न करने वाला है, १-७६।”

“दुःखित, असमर्थ शोचार्त्त तथा तपस्वियों को भी समय पर शांति प्रदान करनेवाला यह नाट्य मैंने बनाया है, १-८०।”

“यह नाट्य धर्म, यश, आयु की वृद्धि करने वाला, लाभ करने वाला, युद्धि बढ़ाने वाला और संसार को उपदेश देने वाला होगा, १-८१।”

“न कोई ऐसा वेद है, न शिल्प है, न विद्या है, न कला है, न योग है, न कर्म है जो इस नाट्य में नहीं दिखाया जा सकता, १-८२।”

‘यह नाट्य वेद, विद्या, इतिहास तथा अर्थशास्त्र का स्मरण करानेवाला तथा संसार में विनोद करने वाला होगा, १-८६।”

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय नाट्य का आदर्श केवल जनता की चित्तवृत्ति को आनन्दित करना तथा उनकी इंद्रिय-लिप्सा को उत्तेजित करना नहीं बल्कि धर्म, आयु और यश की वृद्धि करना है। भारतीय नाट्य-शास्त्र तथा नाट्य-साहित्य की यही विशेषता है।

कठपुतली का नाच—अब हम रूपकों के सम्बन्ध में एक और ध्यान का विवेचन करना चाहते हैं जिनसे रूपकों की प्राचीनता और उनके आरम्भिक रूप पर विशेष प्रकाश पड़ने की संभावना है। पाठकों में से बहुतों ने कठपुतली का नाच देखा होगा। संस्कृत में कठपुतली के लिये पुत्रिका, पुतली और पुत्तलिका

बद्ध विवरण नहीं दिया जा सकता । उसका क्रमबद्ध इतिहास प्रायः प्रसिद्ध भरत मुनि के समय से ही मिलता है । पर यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भरत मुनि ने जो नाट्य-शास्त्र लिखा है, वह नाटक का लक्ष्य-ग्रन्थ है और वह भी कई लक्ष्य-ग्रन्थों के अनन्तर लिखा गया है । यह तो स्पष्ट ही है कि नाटक-सम्बन्धी लक्ष्य-ग्रन्थ उसी समय लिखे गये होंगे, जब देश में नाटकों और नाट्य-कला का पूर्ण प्रचार हो चुका होगा क्योंकि अनेक नाटकों को रंगमंच पर देखे अथवा पढ़े बिना न तो उनके गुणदोषों का विवेचन हो सकता था और न उनके सम्बन्ध में लक्ष्य-ग्रन्थ ही बन सकते थे । भरत को कालिदास तक ने आचार्य और माननीय माना है । अनेक प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भरत का समय ईसा से कम से कम तीन चार सौ वर्ष पहले का तो अवश्य ही है, इससे और पहले चाहे जितना हो । कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में नाटकों और रंगशालाओं का जो वर्णन मिलता है उससे भी यही सिद्ध होता है कि उस समय इस देश में नाटकों का पूर्ण प्रचार था और बहुत से लोग नट का काम करने थे । अर्थ-शास्त्र का समय भी ईसा से कम से कम तीन सौ वर्ष पहले का है । प्रायः उसी समय के लगभग भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र का भी रचना की थी । नाट्य-शास्त्र के आरम्भ में कहा गया है कि एक बार वैश्वानर मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुःखित हुए । इस पर इन्द्र तथा दूसरे देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनो-विनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए, जिससे शूद्रों तक का चित्त प्रसन्न हो सके । इस पर ब्रह्मा ने चारों वेदों को दुलाया

नागानन्द आदि नाटक हैं। शूद्रक का नृसिंहादिक नाटक भी बहुत अच्छा है, पर फइते हैं कि वह भास के द्रिद्रचारदत्त के आधार पर लिखा गया है। इनके पीछे के नाटककारों में भवभूति हुए जो कन्नौज के राजा यशोवर्मन् के आश्रित थे और जिनका समय सातवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है। इनके रचित महावीरचरित, उत्तर-रामचरित और मालतीमाधव नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके उपरांत नवीं शताब्दी के मध्यमें भट्ट नारायण ने देवीसिंहार और विशालदत्त ने मुद्राराक्षस की रचना की थी। नवीं शताब्दी के अन्त में राजशेखर ने कर्पूरमंजरी, बालरामायण और बाल भारत आदि नाटक रचे थे और ग्यारहवीं शताब्दी में शृण्णमिश्र ने प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक की रचना की थी। दसवीं शताब्दी में धनंजय ने दशरूपक नामक प्रसिद्ध लक्ष्मण-प्रणय भी लिखा, जिसमें नाटक की कथा-वस्तु, नयक, पात्र, कथोपकथन आदि का बहुत अच्छा विवेचन किया गया है।

इसवीं दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी तक तो संस्कृत में बहुत अच्छे-अच्छे नाटकों की रचना होती रही, पर इनके उपरांत संस्कृत नाटकों का पतन-काल आरम्भ हुआ। इनके अनन्तर जो नाटक बने वे नट्य-कला की दृष्टि से उतने अच्छे नहीं हैं, जितने अच्छे उनमें पहले के बने हुए नाटक हैं। इनो लिये हम उनका कोई उल्लेख न करके दूसरी बात पर विचार करना चाहते हैं।

भारतीय नाट्य-कला पर यूनानी प्रभाव-संस्कृत के

अधिक से अधिक केवल यही सूचित होता है कि जिस समय हमारे यहाँ के अच्छे-अच्छे नाटक बने थे उस समय यवनों और शकों के साथ हमारा सम्बन्ध हो चुका था। तीसरी बात यह है कि भारतीय और यूनानी नाटकों के तत्वों में आकाश और पाताल का अन्तर है। हमारे यहाँ करुण (Tragic) और हास्य (Comic) का कोई भगड़ा ही नहीं है। हमारे सभी नाटक लोकानन्दकारी होते थे और हमारे यहाँ रङ्गमञ्च पर हत्या, युद्ध आदि के दृश्य दिखलाना वर्जित था। यूनानी नाटकों में केवल चरित्र-चित्रण की ही प्रधानता है, पर हमारे यहाँ प्राकृतिक शोभा के वर्णन और रसों की प्रधानता मानी गई है। विक्रमोर्वशीय का आरम्भ ही हिमालय के विशाल प्राकृतिक दृश्य से होता है। उत्तर-रामचरित और शकुन्तला में भी प्राकृतिक शोभा के ही वर्णन हैं। यूनानी नाटक बहुधा खुले मैदानों में हुआ करते थे, अथवा ऐसे अखाड़ों आदि में हुआ करते थे जिनमें और भी अनेक प्रकार के खेल-नमाशे होते थे। पर भारतीय नाटक एक विशेष प्रकार की बनी हुई रङ्गशालाओं में होते थे। नाराश यह है कि फदाबित् एक भी बात ऐसी नहीं है जो यूनानी और भारतीय नाटकों में समान रूप से पाई जाती हो। हाँ, दोनों में अन्तर बहुत अधिक और प्रत्यक्ष है, और फिर सब से बड़ी बात यह है कि नाटक की रचना करना प्रतिभा का काम है और प्रतिभा कभी किसी की नकल नहीं करती। वह जो बुझ करती है, आपसे आप, सर्वथा स्वतन्त्र रूप से करती है।

उनके अनुकरण पर और और देशों में जो नाटक बने वे प्रायः दुःखांत ही थे ।

यद्यपि ये अज्ञा-गीत युरोप के आधुनिक कर्ण नाटकों के मूल रूप हैं, तथापि यूनान में वास्तविक कर्ण नाटकों का आरंभ महाकवि होमर के इलियड महाकाव्य की रचना के अनंतर हुआ था । पहले तो देवताओं के समने केवल नृत्य और गीत होते थे, पर पीछे ने उनमें सवाद या कथोपकथन भी मिला दिया गया था । गायकों का प्रधान एक मंच पर खड़ा हो जाना था और शेष गायकों के साथ उसका कुछ कथोपकथन होना था, पर इस कथोपकथन का मूल सभवन महाकवि हासर का इलियड महाकाव्य था । पहले शहरों में कुछ भिन्नमते इलियड महाकाव्य के इधर-उधर के अंश गाने फिरते थे जो लोगों का बदन पसंद आने से और जिनका प्रचार शीघ्र ही बदन बट गया था । कुछ दिनों के अनंतर धार्मिक उत्सवों पर अज्ञा-गीतों के साथ साथ इलियड के अंश भी गाने जाने लगे । इस प्रकार अज्ञा-गीतों और इलियड-गीतों के मेल से यूनान में नाट्य-कला का बीज रोड़ा लगा । नृत्य गान और नृत्य में कथोपकथन के मिल जाने पर न कला का सृष्टि मवेश-भूषा और भाव-भंगों के अनिश्चित रूपों में ही रहने के बजाय बदन की कसर रह जाती थी ।

इस प्रकार नाटकों का मूल रूप यूनान के इवराण शक्ति-धारे नाट्य-कला का विकास होने पर आरंभ हुआ । इनमें नवीनता अथवा विशेषता लाने लगने के अनंतर ही इनाम सत्रयुग में वर्ष पूर्व धेस्पिस नामक एक यूनानी कवि हुआ था । जन्मन यूनान में सबसे

कारण फदाचित्त यही था कि प्राचीन काल में प्रायः सभी देशों में अभिनेता और नट कुञ्ज उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते थे। रोम के लोग विजेता थे, इसलिए वे अभिनय आदि के लिये अपने दासों को शिक्षा देकर तैयार किया करते थे। रोम की सभ्यता और बल की वृद्धि के साथ ही साथ बड़ा नाटकों की भी खूब उन्नति हुई थी। पर ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य में जब ईसाई पादरियों का जोर बहुत बढ़ गया और वे नाटकों तथा अभिनेताओं की बहुत निंदा और विरोध करने लगे, रोम में नाट्य-कला का ह्यम आरंभ हुआ। जब रोमन लोग रंगशालाओं में अपने मनोविनोद के लिये अनेक प्रकार के कृत्या और निर्दयता-पूर्ण खेन कराने लग गये और उन रंगशालाओं के कारण लोगों में विनाम्नता बहुत बढ़ गई तब नाटकों आदि का और भी जोर विरोध होने लगा तथा राज्य का जोर से उनका प्रचार रोखने के लिये अनेक प्रकार के नियम बनाने लगे। यह निश्चय किया गया कि नट लोग ईसाईयां के धार्मिक उत्सवों आदि में सम्मिलित न हो सकें और जो दिन रविवार या दूसरी वृद्धियों के दिन राज्य में न नाट्य-शालाओं में जाया करे वे समाज-युत और विचार-युक्त न हों। उस समय अनेक देशों में जोर से अंध विचारों का प्रचार हुआ। ईसाई धर्म का बहुत बल और जोर था यही तक कि नाटकों आदि के भी प्रायः समाचारों के लोप हो गया। अतः अनेक विरोध के कारण रोम में नाट्य-कला का प्रचार न हो सका और अन्त में नटक विनष्ट हो गये। इसके बाद भी जब राजा इन दिवसों का तथा

हैं। जिस प्रकार रोम में नाट्य-कला का प्रचार यूनान के अनुकरण पर हुआ था, उन्ही प्रकार यूनान में नाटकों का प्रचार मिस्र के नाटकों की देखादेखी हुआ था। यूनान में नाटकों का प्रचार होने से बहुत पहले मिस्र में नाटकों का बहुत कुछ प्रचार था। उनका आरम्भिक रूप भी यूनानी नाटकों के आरम्भिक रूप से बहुत कुछ मिलता जुलता था। वहाँ भी अनेक धार्मिक अवसरों पर देवी देवताओं के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटना के नाटक हुआ करते थे। परन्तु मिस्र की नाट्य-कला भारत की नाट्य-कला के समान इतनी प्राचीन है कि उसका उस समय का ठीक-ठीक और शृङ्खलाबद्ध इतिहास मिलना बहुत ही कठिन है।

चीन के नाटक—चीन में भी नाट्य-कला का विकास, भारत की भाँति, बहुत प्राचीन काल में नृत्य और संगीत कलाओं के संयोग से हुआ था। पता चलता है कि कनफूची के समय में भी वहाँ अपने आरम्भिक रूप में नाटक हुआ करते थे। ऐसे नाटक प्रायः फसल अथवा युद्ध आदि की समाप्ति पर हुआ करते थे। उनमें लोग नृत्य और गीत आदि के साथ कई प्रकार की नकलें किया करते थे। परन्तु नाटक के शुद्ध और व्यवस्थित रूप का प्रचार वहाँ ईसा से लगभग ४०० वर्ष पीछे हुआ था। चीन वाले कहते हैं कि तत्कालीन मन्नाट् वान ने पहले पहल नाटक का आरंभ किया था। पर कुछ लोगों का मत है कि नाटक का आविष्कार सम्राट हुएन-मन्ग था, जो ईसवी के लगभग हुआ था। चीनी नाट्य-कला का इतिहास में विभाजित किया जा



भारतीय और संस्कृत नाटकों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं।

आधुनिक भारतीय नाटक—हम ऊपर कइ चुके हैं कि ईसा की दसवीं शताब्दी के उपरान्त भारतीय नाट्य-कला का हास होने लगा था और अच्छे नाटकों का बनना प्रायः बन्द सा हो चला था। यद्यपि हमारे यहाँ के हनुमन्नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय, रत्नावली, मुद्राराक्षस आदि नाटक दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच में बने थे, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन दिनों नाटकों की रचना और प्रचार दोनों में कमी होने लग गई थी। चौदहवीं शताब्दी के उपरान्त तो मानो एक प्रकार से उनका सर्वथा अन्त ही हो गया था। इधर संस्कृत में जो थोड़े बहुत नाटक बने भी, वे प्रायः साधारण कोटि के थे। वहाँ इस धान का भी ध्यान रखना चाहिये कि भारतवर्ष में नाट्य-कला का हान ठीक उसी समय प्रारम्भ हुआ था, जिस समय इस देश पर मुसलमानों के आक्रमणों का आरम्भ हुआ था। विदेशियों के आक्रमणों और राजनीतिक अव्यवस्था के समय यदि लोगों को खेल तमारी अच्छे न लगें तो वह कोई अल्पाभाविक बात नहीं है, और इसके परिणाम स्वरूप यदि भारत में नाट्य-कला का अन्त हो गया तो इसमें किन्ती को आश्चर्य न होना चाहिये। कुछ दिनों के आक्रमणों और राजनीतिक अव्यवस्था के उपरान्त प्रायः सारा देश मुसलमानों के हाथ में चला गया। आरम्भ में ही मुसलमानों में मंगीत और नाट्य-कला का नितान्त अभाव था।



समय प्राचीन नाट्य-शास्त्र भग्न मुक्ति को हो है। पाणिनि के समय में भी नाट्य-शास्त्र प्रचलित थे। उन्होंने दो शाखाओं का उल्लेख किया है—शिलालिपि और वृशाभ। पत्रंजलि के समय में भी नाटक खेले जाते थे। उनके महाभाष्य में कंस-वध और बलि-घोस के खेले जाने का साफ-साफ उल्लेख है।

वैदिक संवाद—हिन्दू नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम रूप वेदों के शिष्टे हमें वेदों की आलोचना करनी चाहिए। ऋग्वेद के षट् सूक्तों में कुछ संवाद हैं—जैसे यम और यमी का संवाद, पुरुषा और उर्वशी इत्यादि। इनकी गरमा हम नाटकों में कर सकते हैं। पुरुषा और उर्वशी का संवाद ही पुराणों में, कथारूप में, विष्णु-पूर्वक वर्णित हुआ है, और उसे ही कालिदास ने नाटक का रूप दिया है। जल पढ़ना है, पक्षि-पक्ष नाटकों में निर्मित संघर्ष हो सकता था। पौत्र ने उनमें संवाद (अर्थात् भाष्य या कथोपकथन) जोड़े गए हैं। फिर, इनके अन्तर्गत वर्धाचन्द्र उनमें उपलब्धता का समावेश किया गया है। कुछ भी हो, इनमें कोई संवाद नहीं कि बहुत प्राचीन-कार ने ही नाटकों का अस्तित्व होने लगा था।

भारतीय नाटकों की विविधता—हिन्दू-नाटककार काली और विद्याओं को एकत्रित का मूल मूलन करने थे। उन्हें संवाद ने सभी नाटकों को पदनाओं को कथोपकथन की संरचना में बंध करवा है। हिन्दू साहित्य में संवादों और विविधता नाटक कथोपकथन नहीं है। उन्हें एवं कथोपकथन के बाद

अने फलत, बुद्ध, शान्ति आदि विषयों का कालंबरिक रूप में उर्गान रहता था । सू-सैन-द्वारा चीन-विजय पर एष ऐसों ही नाटकों की रचना की गई थी । बुद्ध दत्तक भाष्यों के अनुसार यह कहा जाता है कि सन ४८० के लगभग सम्राट् हान-टी ने नाटकों का आविष्कार किया । पर अधिकांश लोगों की यह सम्मति है कि सन ७०० में संगीत-यन्त्र-विचारद् सम्राट् सु-नन्ग ने ही नाटकों का प्रचार किया । पेटोमार्स की कब्रोलना और नाटकों की सृष्टि होने लगी ।

चीनी-नाटकों का आदर्श रूप उँचा है । कहा जाता है, प्रत्येक नाटक शिवा-श्रद्ध और भाव-पूर्ण होता था । जो नाटककार कालील अथवा अनाचार-दोषक नाटकों की रचना करता है, वह दण्डीय है । लोगों का यह विश्वास है कि वह अब ऐसे नाटक नहीं पर खेले जायेंगे, यह अब मृत्यु के दार भी नाटककार को नाश-प्रदान भोगनी पड़ेगी । चीनी-नाटकों में सरोजान और शिवराज नाटकों का भेद नहीं है । वही नाटकों में वही अर्थ दखना पार है । धार्मिक नाटकों का अन्तः अर्थ उँचा है । ऐतिहासिक नाटकों का भी अन्तः अर्थ उँचा है । पर बहुत दूर विचार गया है कि सम्राट्, न्यायी, राजकुमार और सखियों का अन्तः अर्थ नाटकों में नहीं उँचा जाना जाय ।

चीनी-नाटक इतिहास, कालील अथवा अनाचार-दोषक नाटकों में ही अन्तः अर्थ उँचा है । ऐतिहासिक नाटकों का अन्तः अर्थ उँचा ही न हुआ है । सम्राट् (२ नाटक) को ही ऐसी अन्तः अर्थ उँचा है । वही कि कालील नाटकों को । अब पूरे ही ऐतिहासिक

नामीप, है। लैला-प्रार्थना स्त्री नहीं, पुरुष है। तो भी वह स्त्री का अभिनय इस स्त्री ने करता है कि लोग देखकर हंग हो जाते हैं। उसका स्वर बहुत ही सधुर है। इनके अभिनय में ज़रा भी छत्रि-मत्ता नहीं आन पड़ती। स्वर में घटी बात यह है कि वह जिन पात्र का अभिनय करता है, उसी में विलगुन नज़्दीन हो जाता है। वह हीन नाटकों से पाँट लेता है। सभी में वह स्त्री का ही अभिनय करता है। इन नाटकों में से इनने दो बहुत पसन्द हैं। एक का नाम है 'पुष्पविनर्जन', और दूसरे का 'श्वदंसवक' 'पुष्पविनर्जन' एक कल्पना से लिया गया है। वह अपन्यास चौथीम जिन्दों से समान हुआ है, और समाने १०० अध्याय हैं। उनकी रचना २०० वर्ष पहले किसी लेखक ने की थी। लेखक का नाम अज्ञान है। यान से अज्ञान कल्पना से उभरी गायता है। 'पुष्पविनर्जन' को बहुत हदसमाप्ति है। उसकी कविता का भाव विनया सधुर है—

“पुष्प सुभाके और वह जाते हैं, और उठन हुए काबाय का खाम धर लेते हैं। उनकी बली एक और सुन्दर लुन ही जाती है, पर उनके अरुं बौन ग्राहक करता है।”

कह-लेखक की कल्पना यह है कि उरु काय का न कोई पर कायकम किया, पर एक लड़की पुष्प का रूप धारण कर कोले लेना में जाती ही गई। पुष्प-सुन्दरि ने उठन घटी दोगला निरगर्ही। काल में ही लेखकने उरु ही का उरु का विचार उरु करते की थी, पर उरुका में उरुका कायकम कमाने जाती। उरुका उरुका में उरुका उरु का उरु की है गई। और उरु का उरु का उरु का उरु के उरुका की।



यह देखा गया है कि सभी देशों की प्रचलित प्राचीन गाथाओं में समता है। एक विद्वान ने अभिज्ञान-शाकुन्तल की कथा से विलकुल मिलती-जुलती एक कथा ग्रीक-साहित्य से उद्धृत की थी। जापानी नाटकों में इन हेमलेट, मार्लन, एंड्रोमेडास, अथवा हार्ने-रशादि को जापानी वेश में देख सकते हैं। उनकी बातें भी वे ही हैं, और काम भी वैसे ही। जो भिन्नता है, वह देश और काल के कारण। बात यह है कि देश और काल के व्यवधान से विभक्त हो जाने पर भी मानव-जाति एक ही है, और उसकी मूल भावनाएँ सर्वत्र एक ही रूप में विश्वमान रहती हैं। अतएव जिन कथाओं में मनुष्यत्व का मशा स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है, उनमें परस्पर भिन्नता कैसे हो सकती है? हेमलेट गेस्सपियर के द्वारा डेन्मार्क का राजकुमार बनाए जाने पर भी मनुष्यत्व के कुछ विशेष गुणों से युक्त एक व्यक्ति-मात्र है, जिनका अस्तित्व सभी देशों और सभी कालों में सम्भव है। एक विशेष स्थिति में रहने से कोई भी मनुष्य हेमलेट हो सकता है।

कादुकी-नाटकों की अपेक्षा नो-नाटक अधिक प्राचीन हैं। फ्रांसे में ही ये नाटक बड़े लोकप्रिय हुए, और अपनी लोक-प्रियता के कारण ही विद्वानों की दृष्टि में हो गये। विद्वानों ने नो-नाटकों को अपना लिया और कादुकी-नाटक अशिष्ट जनता के ही उपयुक्त समझने लगे। कादुकी-नाटकों का प्रचार बढ़ता ही गया। शहर विद्वानों की घृणा भी उन पर बढ़ती गई। इन नाटकों से अज्ञानता में पड़ने लिये भी सम्मिलित होती थीं।



वाद जितने नाटक-कार हुए, उनमें गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने ख्याति प्राप्ति की। इनके बाद अँगरेजी के आधुनिक नाट्य-साहित्य का आरंभ होता है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में नेपोलियन का पतन होने पर, इंगलैंड की प्रभुता अच्छी तरह स्थापित हो गई। इसके बाद उसने अपने व्यवसाय और वाणिज्य में बड़ी तरकी की। व्यापार का केंद्रस्थल है नगर। इस लिये नगरों की जन-संख्या खूब बढ़ने लगी।

नगरों में जन संख्या की वृद्धि के साथ-ही-साथ नाट्यशालाओं की भी वृद्धि होने लगी। अभी तक नाटक पर सिर्फ मनोरंजन के स्थान के बड़े प्रायः ऐसे ही धिक् जाया करते थे, जो निठल्ले बैठ समय बिताया करते थे परन्तु अब नगर में रहनेवाले माधुर्या स्थिति के लोग और मजदूर भी नाटक पर जाने लगे। दिन-भर काम करने के बाद आगे बड़ी बर्षि मनुष्य अपना मन न बहनावे ता उसका शरीर कैसे टिक सकता है? मन बहाने का मध्य में अच्छा स्थान नगरों में नाटक पर ही है। इंग्लैंड में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, नाटक और नाट्य-कला का खूब उन्नति हुई।

आधुनिक नाट्य-साहित्य में दो नामों के नाटक-कार टी. डेविलो और राबर्टसन। इनके बाद दो नामों के नाटक प्रिय आफ वेल्स-थिएटर में खेले जाते हैं। इनके नाटक का ही भेद है कामेडी और ट्रेजिडी। राबर्टसन ने कामेडी-नाटक के पुनरुद्धान की चेष्टा की। प्रिय आफ वेल्स-थिएटर का अन्वयण य वेनकास्ट

घाद जितने नाटक-कार हुए, उनमें गोल्डस्मिथ और शेरीडन ने ख्याति प्राप्ति की। इनके बाद अँगरेजी के आधुनिक नाट्य-साहित्य का आरंभ होता है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में नेपोलियन का पतन होने पर, इंग्लैंड की प्रभुता अच्छी तरह स्थापित हो गई। इसके बाद उसने अपने व्यवसाय और वाणिज्य में बड़ी तरफ़ी की। व्यापार का केंद्रस्थल हूँ नगर। इस लिये नगरों की जन-संख्या खूब बढ़ने लगी।

नगरों में जन-संख्या की वृद्धि के साथ-ही-साथ नाट्यशालाओं की भी वृद्धि होने लगी। अभी तक नाटकघर सिर्फ मनोरंजन के स्थान थे। वहाँ प्रायः ऐसे ही धनिक जाया करते थे, जो निठल्ले बैठे समय बिनाया करते थे, परंतु अब नगर में रहनेवाले साधारण स्थिति के लोग और मजदूर भी नाटकघर जाने लगे। दिन-भर काम करने के बाद आधी घड़ी यदि मनुष्य अपना मन न बहलावे, तो उसका शरीर कैसे टिक सकता है? मन बहलाने का सब से अच्छा स्थान नगरों में नाटक घर ही है। इसीलिये, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, नाटक और नाट्य-कला की खूब उन्नति हुई।

आधुनिक नाट्य-साहित्य के पहले मौलिक नाटककार टी० डब्ल्यू० रावर्टसन (१८२६-१८७१) थे। उनके नाटक प्रिंस आफ वेल्स-थिएटर में खेले जाते थे। अँगरेजी में नाटकों के दो भेद हैं, कामेडी और ट्रेजिडी। रावर्टसन ने कामेडी-नाटकों के पुनरुद्धान की चेष्टा की। प्रिंस आफ वेल्स-थिएटर के अध्यक्ष थे ~~के~~

साहय । उन्होंने नाट्यशाला में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया । बेनकाफ्त साहय का जन्म मन् १८४१ में हुआ था । मन् १८६५ में उन्होंने प्रिंस आफ वेन्स-थिएटर की स्थापना की । उसने नाट्य-कला में परिवर्तन कर दिया । १८६७ में उन्हें 'मर' की उपाधि मिली ।

इसी समय लीसियम (Lycéum)-थिएटर में ईंगलैंड का प्रसिद्ध नट हेनरी इरविंग रंगमंच पर आया । वह मन् १८५८ में १८६६ तक लीसियम का प्रबंध करता रहा । उसकी बड़ी कीर्ति हुई । मन् १८५४ में हेमलेट का पार्ट उसने बड़ी श्रुति में रखा । शेक्सपियर के प्रसिद्ध मर्चेट आफ् वेनिस नाटक में वह शाइलाफ का पार्ट रखा था । इसमें भी वह कमाल करता था । उसने नटों का अच्छी स्थिति कर दी । उसके पहले लोग नटों का सम्मान नहीं करते थे । उनका पेशा भी नीच समझा जाता था । पर इरविंग की सब शोर्गों ने इच्छजन की । मन् १८६५ में वह नाइट बन गया । नटों में हमको सबसे पहले यह उपाधि मिली ।

इस समय ईंगलैंड में अच्छे-बच्छे कवि हुए । उन्होंने नाटक का जन्म । परन्तु उनके नाटकों को रंगमंच पर अच्छी मरलता नहीं हुई । मेहरंही ने प्रसिद्ध कवि श्राउनिंग के स्टेफोर्ट-नामक नाटक को जिसे बड़ी तैयारी की । पर वह पाँच रात से अधिक नहीं चला । प्रिंसमन के दो रूप यह वेस्ट-नामक नाटकों की इच्छिगने चला । पर उसमें कुछ मरलता नहीं हुई । इसीलिये कौंच नाटकों को अच्छे पर श्रेष्ठता में नाटक लेने प्रारंभ थे । मन् १८८१ में ७० ई.स.७ दिवसों साहय का नाटक रखा गया । उसका कुछ

देती, आचरण को विरुद्ध करती, निराशा और उत्साह-हीनता को दूर करती और नतुन्यों को उन्नति का पथ बतलाती।"

सन् १८५८ में उन्होंने नाटक लिखना आरम्भ किया। इसी साल उनका 'Pleasant and unpleasant' नामक प्रथम प्रकाशित हुआ। उसमें लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली।

उनका एक नाटक 'My Wife and Profession' सन् १८६० में प्रकाशित हुआ। इसका अर्थ है 'मेरी पत्नी और मेरी पेशवा'। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Two Gentlemen of Verona' सन् १८६१ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merchant of Venice' सन् १८६२ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Taming of the Shrew' सन् १८६३ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merry Wives of Windsor' सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merry Wives of Windsor' सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merry Wives of Windsor' सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merry Wives of Windsor' सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

उनका एक नाटक 'The Merry Wives of Windsor' सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। इस नाटक में उन्होंने समाज के अनेक दोषों को उजाड़ दिया है।

सभी घटनाएँ अलौकिक हैं। जैक्सपियर के नाटकों में भी प्रेतात्मा का दर्शन कराया जाता है। हिन्दू-मात्र का यह विश्वास है कि मानव-जीवन से एक अदृष्ट शक्ति काम कर रही है। उसी शक्ति का सहाय बनवाने के लिये अलौकिक घटनाओं का समावेश किया जाता है। जैक्सपियर भी इस अदृष्ट शक्ति को मानता था। उसने भी कहा है—'Poetry is a tale in the affairs of men' अर्थात् मनुष्यों के जीवन में सभी एक ऐसी तरह उठती है, जो हमें सहायता के लिये पर पहुँचाती है, और फिर निरालता के मरुत में गिरा देती है। दूसरी बात यह है कि नाटकों में नैतिकता का विश्व-व्यापी अभाव है। लोगों का जो प्रवृत्तिक विश्वास है, अथवा समावेश नाटकों में करना अनुचित नहीं। जैक्सपियर के समय में लोग प्रेमों के दार्शनिक पर विश्वास करते थे। उसी प्रकार धार्मिकता के समय में दुनियाँ के ज्ञान पर लोगों का विश्वास था। अतएव जो नाटकों में दार्शनिक विचार के पक्षधर हैं, उन्हीं ही में भी ऐसी घटनाओं का समावेश करना अनुचित है।

नाटक की यह विशेषता नहीं है। हमें घटनाओं का सत्य-व्यक्तिगत दर्शन होना चाहता है। नाटकीय दुःख-सुख की शक्ति नहीं हमें देना चाहती है। अतएव नाटक का सत्य दर्शन ही हमें देना चाहिए। नाटक की शक्ति ही हमें देना चाहिए। नाटक की शक्ति ही हमें देना चाहिए। नाटक की शक्ति ही हमें देना चाहिए।

यह भी हमें नाटकों में समावेश देना चाहता है। अतएव

ऐसा समावेश करते हैं कि उससे एक अपूर्व चित्र खिल उठता है। वह चित्र पाठकों की कल्पना पर प्रभाव डालता है। वे अपने अनुभव द्वारा कवि के आदर्श की उचना स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लेखक मृत्यु का बहिष्कार नहीं करते। वे संसार की दैनिक घटनाओं से ही अपनी कथा के लिये सामग्री का संग्रह करते हैं। परन्तु उनकी कृति में घटनाओं का ऐसा विन्यास किया जाता है कि पाठक उसे प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करें। पाठकों के मन में यही बात उद्दिष्ट होती है कि हमने ऐसा देखा नहीं है, परन्तु देखना अवश्य चाहते हैं। विक्रम ब्यूगो इमा अंगी के लेखक हैं। रोमैटिक साहित्य कल्पना की सृष्टि है। वह प्रकृति में अतीत है। वैलजक की रचना में कल्पना की ऐसी ही लीला दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक नाट्य-साहित्य में समाज के यथार्थ चित्रण का स्वरूप ग्याल गया जाता है। ऐसे नाटकों का आरम्भ इडमन ने किया है। उनमें समाजिक जीवन का यथार्थ परिपाक हुआ है। तो भी उनमें समाज के भविष्य विज्ञान का अभिसार पाया जाता है। अतः जो लोग यह कहते हैं कि आधुनिक साहित्य में यथार्थता की प्रधानता है, उनकी बात स्वीकार नहीं की जा सकती। बात यह है कि जिस प्रकार वर्तमान युग में यथार्थ जीवन मृत भविष्य और वर्तमान का पकड़ कर अप्रत्यक्ष रूप से है, जिस प्रकार वह अतीत की वर्तमान में संजीवित करके समाज के भविष्य के कारण उत्पन्न रहा है, उसी प्रकार साहित्य में भी समाज के वर्तमान को पकड़ कर कथा की भाँति ही आधुनिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि यथार्थ-वर्तमान को रट्टा करके समाज के साथ

उसके साथी ही। उपन्यास-भर में उनके चरित्र की इसी जटिलता का विश्लेषण किया गया है। रवीन्द्र बाबू के 'घरे-बाहिरे'-नामक उपन्यास में संदीप जैसा इन्द्रियपरायण है, वैसा ही स्वदेश-वत्सल और वीर भी। इवसन, मेटार्लिक अथवा रवीन्द्रनाथ की कुछ प्रधान नायिकाओं के चरित्र ऐसे अंकित हुए हैं कि जब हम अपने संस्कारों के अनुसार उन पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनके चरित्र में हीनता देखते हैं; परन्तु सत्य की ओर लक्ष्य रखने से यही कहना पड़ता है कि हम उन पर अपनी कोई सम्मति नहीं दे सकते।

वर्तमान युग को विद्वान लोग 'डिमाक्रेटिक' लोग-यन्त्र का युग कहते हैं। सर्वत्र सभी विषयों की नाना प्रकार से परीक्षा हो रही है। आजकल जैसे सामाजिक और राष्ट्रीय तत्व साहित्य में स्थान पा रहे हैं, वैसे ही वैज्ञानिक, दार्शनिक, और आध्यात्मिक तत्व भी साहित्य के अंगीभूत हो रहे हैं। अत्र रस और तत्व का सम्मिलन हो गया है। गेटी और शिलर ने अपने समय में तत्वों को कला के रस-रूप में परिणत किया था। अन्य युगों की अपेक्षा वर्तमान युग में साहित्य का अधिकार-क्षेत्र बढ़ गया है। आधुनिक साहित्य में आध्यात्मिक काव्य, नाटक और उपन्यासों की रचना से यही बात प्रकट होनी है।

आजकल इंग्लैंड के नाट्य-साहित्य की जैसी गति है, उसे भली भाँति समझने के लिये हम महायुद्ध के कुछ समय के पहले के साहित्य पर ध्यान देना चाहिए। युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले, चार-पाँच वर्ष तक इंग्लैंड का साहित्य और कला-कौशल

भारतीय नाटकों की कई विशेषताएँ हैं। यदि नाटककार और नट अपने अभिनय में भारतीयता का खयाल रखें, तो उससे बड़ा लाभ हो। खोन्ड्रनाथ का एक नाटक 'डाकघर' कलकत्ते में खेला गया था। उसमें भारतीयता का खयाल रखा गया था। उससे उसे सफलता भी अच्छी हुई।

हिन्दी के कुछ नाटककार संगीत के ऐसे प्रेमी हैं कि वे मौक़े-वे-मौक़े अपने पात्रों से गाना ही गवाया करते हैं। राजा की कौन कहे, राजमहिषी तक अपने पद का गौरव भूल कर नाचने-गाने लग जाती है। राजसभा तों दिलकुल संगीतालय ही हो जाती है। यह भी खे दकी बात है।





1000

पटाक्षेप के साथ ही नेत्रय्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उसके अभिनय शुष्क हो जाता है। जहाँ बहुत स्वर मिलकर कोई वाजा बजे या गान हो उसको चर्चरिका कहते हैं। इसमें नाटक की कथा अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है। जैसे सत्य हरिश्चन्द्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका बजै वह भैरवी आदि मवेरे के राग को और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजै वह रात के राग की होनी चाहिए।

कैशिकी, सात्वती, धारभटी और भारती वृत्ति, कैशिकी वृत्ति—जो वृत्ति अति मनोहर, स्त्रीजनोचित भूषण से भूषित, और रमणी-शालुल्य नृत्य गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास-युक्त होती है उसका नाम कैशिकी वृत्ति है। यह वृत्ति शृङ्गाररस प्रधान नाटकों की उपयोगिनी है।

सात्वती वृत्ति—जिस वृत्ति-द्वारा शौर्य, दान, दया और दक्षिण्य प्रभृति से वीरोचिता, विविध गुणान्विता, आनन्द-विशेषोद्गाविनी, सामान्य विलास-युक्ता, विशोका और उत्साहवाद्भिनी वाग्भंगी नायक-कर्तृक प्रयुक्त होती है, इनका नाम सात्वती वृत्ति है। वीररस-प्रधान नाटक में इनकी आवश्यकता होती है।

धारभटी वृत्ति—नाया, इन्द्रजाल, नंभान, क्रौर्य, आपात, प्रणिपात और संघनादि विविध रौद्रोच्चिदकार्यजडित वृत्ति का नाम धारभटी है। रौद्ररस वर्णन के स्वतन्त्र में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिए।

प्ररोचना—जिसके अनुष्ठान द्वारा अभिनयदर्शन में स्वनाजिब लोगों को प्रकृति जन्मती है उसका नाम प्ररोचना है। यह मूत्रधार नट, पात्रिपार्श्वक या नटी के द्वारा विदित होती है।

नेपथ्य—रंगमण्डल के पश्चात् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उसका नाम नेपथ्य है।

अलंकारविद्या इन्ही स्थान में पाशों को देस-भूपत्यादि में साधने हैं। जब रंगभूमि में आकाशवाणी, पृथ्वी वाणी अथवा और कोई मानुषी वाणी का प्रयोजन होता है तो पर नेपथ्य ही में से गार्ह वा शरी जाती है।

उद्देश्यदीप्त—मुपित आकाशविद्या के समस्त गर्भों का नाम उद्देश्यदीप्त है। यदि जो इच्छा साध्य न कर सकेगा तो उक्त उद्देश्य नाटक में परिगणित न होगा।

दण्ड—नाटकीय इतिहास अथवा कोई विषय विदित का नाम दण्ड है। दण्ड ही प्रथम की है तथा—आदिशक्ति दण्ड और आशक्ति दण्ड।

जो समस्त इतिहास का प्रथम अक्षर होता है उसको आदिशक्ति कहते हैं। आदिशक्ति का अर्थवत् प्रथम ही दण्ड विदित होती है, तथा समस्त आदिशक्ति दण्ड है। उक्त अक्षरविद्य

जो आदिशक्ति इतिहास का एक ही अक्षर है और समस्त अक्षर में जो दण्ड विदित होता है, उक्त नाम आदिशक्ति दण्ड है। उक्त अक्षरविद्य में सुदीप्त-विदितवादि का अर्थ है।

मानव प्रकृति की समालोचना करने ही तो नाना देशों में भ्रमण करने जाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे, तथा नाना प्रकार के समाज में समान करने विविध लोगों का आलाप गूने तथा नाना प्रकार के ग्रन्थ अध्ययन करे, वरंच समाज में अश्वत्थ गोरक्ष, काम कामा, कामांगी, दस्यु प्रभृति नीच-प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ व वापक धन करे । यह न करने ही मानव प्रकृति समालोचन नहीं है। नाना देशों के मानविक काल विज्ञान, प्रकाश विज्ञान, जैव विज्ञान, दूर दूर तक भाव की सभी रूप का ज्ञान ही मानव प्रकृति का ज्ञान है । विज्ञान ज्ञान द्वारा तथा नाना प्रकार के समाज में रहने के द्वारा ही मानव प्रकृति का ज्ञान हो सकता है ।

हास्य का उद्दीपक हो। संयोग शृंगार वर्णन में इसकी स्थिति विशेष स्वाभाविकी होती है।

रस वर्णन—शृंगार, हास्य, करुण्य, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनन्द।

शृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का। यथा शकुन्तला के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पाँचवें छठे अंक में वियोग।

हास्य, यथा भाग्य और प्रहसनों में।

करुण्य, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में शैब्या के विलाप में।

रौद्र, यथा धनञ्जयविजय में मुडभूमि-वर्णन।

वीर रस ४ प्रकार। यथा दानवीर, सत्यवीर, युद्धवीर और उद्योगवीर। दानवीर, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'जोहि पाली इन्वाहु-सों' इत्यादि। सत्यवीर, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में 'येचि देइ दारा सुधन' इत्यादि। युद्धवीर यथा नीलदेवी। उद्योगवीर ॐ सुदाराहस। भयानक, अद्भुत और वीभत्स, यथा सत्यहरिश्चन्द्र में रनशानवर्णन।

शांत यथा प्रबोध-चन्द्रोदय में, भक्ति यथा संस्कृत चैतन्य-चन्द्रोदय में, प्रेम यथा चन्द्रावली में। वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं।

ॐ सुदाराहस में मुख्य अंगीकार से कोई रस न पाकर सुलको उद्योगवीर की कल्पना करनी पड़ी।

योग्य है। यदि इनके विकृत नायिका-नायक के चरित्र हों तो उनका परिचय दुरा दिखलाना चाहिए। यथा नट्य नाटक में इंद्राणी पर आसक्त होने से नट्य या नाश दिखलाया गया है, अर्थात् चाहे उत्तम नायिका-नायक के चरित्र की सनाति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुश्चरित्र पात्रों के चरित्र की सनाति घंटकमय दिखलाई जाय। नाटक के परिचयान से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पायें।

नाटक की कथा—नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापर-सद्व होनी चाहिए कि जब तक अंतिम अंक न पड़े किंवा न देखें, यह न प्रगट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'भीषा एक को देटा हुआ, उलने यह किया वह किया' प्रारंभ ही में कहानी का मध्य दोग हो।

पात्रों के स्वर—शोक, हर्ष, हान, क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी पटाना-घटाना उचित है। जैसे स्वभाविक स्वर बदलते हैं, वैसे ही श्रुति भी बदले। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि योग्य हो कि पीरे-पीरे करता है, किंतु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागत्य निष्पटक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि-व्यक्ति परस्पर बातें करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहेगी, किंतु दृष्ट ने विषय पात्रों की दूरियों की ओर देखकर करने पड़ने। इन व्यक्तियों पर अभिन्न-पात्रों पर है कि दृष्टि पात्र दूरियों की ओर देखे किंतु यह न योग्य हो कि पात्रों के दूरियों से करते हैं।



पूरा अध्ययन किया था। उसकी लेखनी ने बंगला साहित्य में एक नये युग का आविर्भाव किया। जिस समय रामनारायण तर्करत्न का लिखा हुआ रत्नावली नाटक खेला गया तो मधुसूदनदत्त के हृदय में विचुन गति से यह शुभ भाव जागृत हुआ कि सभी प्रतिभा विदेशी भाषा में अपने महत्व को प्राप्त नहीं कर सकती। जिस मधुसूदन ने आज तक बंगला में एक अक्षर भी नहीं लिखा था वह थोड़े ही समय में अपनी भाषा का सर्वश्रेष्ठ कवि प्रतिष्ठ हुआ। इस समय से पूर्व हिन्दू कालिज के पड़े हुये बङ्गाली नवयुवक अपनी भाषा और साहित्य को घृणा की दृष्टि से देखते थे और अँगरेज़ी भाषा में लिखने में ही अपनी शान समझते थे। परन्तु इस घटना के बाद बंगाल के लेखकों ने अपनी मातृभाषा में ग्वाति प्राप्त करना ही अपना आदर्श रखा है।

मधुसूदनदत्त का पहला नाटक "शर्मिष्ठा" बंगाली नाटकों में बहुत प्रसिद्ध है। यह अँगरेज़ी नाटकों की शैली पर लिखा गया था। इसकी भाषा सरल थी। यह बोलचाल की भाषा थी। उसने रामनारायण तर्करत्न की भाषा का पारिठत्य न था। इसके बाद 'पद्मावती' और "कृष्णकुमारी" लिखे गये। कृष्णकुमारी भारतीय नाटकों में पहला दुःखान्त नाटक (Tragedy) है जिसमें उदयपुर की एक राजकुमारी की विषादनय कथा का वर्णन है। इसमें सन्देह नहीं कि मधुसूदन ही प्राथमिक बंगला नाटक का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

वा अस्मिन् सुखे तु विदुषां चित्तं च
 बन्धुना चित्तं च विदुषां चित्तं च
 चित्तं च विदुषां चित्तं च विदुषां चित्तं च



प्राचीन हिन्दी नाटक

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में प्रत्यक्ष की सृष्टि हुए पचीस वर्ष से विशेष नहीं हुए । यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदांत-विषयक भाषा-प्रत्यक्ष समय-सार नाटक, ब्रजवासीदास के प्रबोधचन्द्रोदय प्रभृति नाटक के भाषा-अनुवाद नाटक नाम से अभिहित हैं, किंतु इन नदों की रचना काव्य की भाँति है, अर्थात् नाटक-रीत्यानुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है । भाषाकविकुलनुकूलमायिक्य देव कवि का देवकायाप्रपंच नाटक और श्रीमहाराज चाशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवाँ का आनन्दरघुनंदन नाटक यद्यपि नाटक-रीति से बने हैं, किंतु नाटक पात्र नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और ये छन्दप्रधान प्रत्यक्ष हैं । सिन्धु नाटक-रीति से पात्रप्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य-वरण श्री कविवर गिरधरदास (वास्तविक नाम दापू गोपालचन्द्र जी) का है । इसमें इन्द्र की प्रकृति

यहाँ पर यह बात प्रकाश करने में भी हमको अतीव आनन्द होता है कि हरदत्तनगरस्थ श्रीसुत प्रो. हेनरिच पिनकाट साहब ने भी शकुन्तला का हिन्दी भाषा में अनुवादक किया है। वह अपने २० मार्च के पत्र में हिन्दी ही में सुनायी लिखते हैं 'जिस पर भी मैंने हिन्दी भाषा के सिरिलाने के लिये कई एक पोथियाँ बनाई हैं। उनमें से हिन्दी भाषा में शकुन्तला नाटक एक है।'

हिन्दी भाषा में जो सबसे पहला नाटक रखा गया वह जानकीमंगल था। स्वर्णवर्मा मिश्रकर साहू ऐरवर्षनारायणनिह के प्रयत्न से पत्र शुक्ल ११ सन् १६२५ में बनारस धियंटर में बड़ी धूमधाम से रखा रखा गया था। रामायण में क्या निबाल कर यह नाटक एरिटर श्रीमलारामदा त्रिपाठी ने बनाया था। इसके पीछे प्रलय और बनपुर के लोगों ने भी हरदत्त-प्रेमनोदितों और साहबिन्दु रखा था। एरिन्डोला रंग में ठीक निम्न पर चलने वाला बड़ी बारी निष्ठ उन का नाटकनमाज नहीं है।

प्राचीन हिन्दी-नाटक-तालिका

अनुप नाटक	(कीर्तिनाम)
शकुन्तला	(रामदाहरणनिह)
सुनायना	(विष्णुदास)
साहबिन्दु	-

१ यह अनुवाद नहीं है। प्राचीन हिन्दी नाटक का अनुवाद के अनुवाद का अनुवाद है।

सज्जाद-सुम्बुल	(बाबू केशोराम भट्ट विहारबंधु-सम्पादक)
शमशाद-सौसन	"
जय नारसिंह की	(पं० देवकीनन्दन तिवारी, प्रयाग समा- चारपत्र-सम्पादक)
होली खगेश	"
चन्द्रदान	"
पद्मावती शर्मिष्ठा चन्द्र सेन	(पं० बालकृष्ण भट्ट हिन्दी- प्रदीप-सम्पादक)
सुरोजिनी	(पं० गणेशदत्त)
"	(राधाचरण गोस्वामी भारतेन्दु-सम्पादक)
मृच्छकटिक	(पं० गदाधर भट्ट मालवीय)
"	(पं० दामोदर शास्त्री)
"	(बाबू ठाकुरदयालसिंह)
वारांगनारहस्य	(पं० बदरीनारायण चौधरी, आनन्द- कादम्बिनी के सम्पादक)
विज्ञानविमाकर	(पं० जानी विहारीलाल)
ललिता नाटिका	(पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्या- चार्य वैष्णव पत्रिका और पीयूषप्रवाह के सम्पादक)
देव-पुरुष-दृश्य	"
वेणीसंशर नाटक	"
गोसंकट	"
जानकीमङ्गल	(पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक (मिश्रधनु)

भारतेन्दु के नाटकों का संक्षिप्त विवरण

(१) "नाटक" नामक ४६ पृष्ठों के लेख में इन्होंने नाटक के लक्षण, नाटक बनाने की रीति तथा नाटक का इतिहास लिखा है। इनके अनिश्चित और घटुन सी जानने योग्य बातें नाटक के विषय में वर्णित हैं, जो पढ़ने योग्य हैं। इसकी रचना मंथन १९४० में हुई।

(२) "मत्स्यहरिश्चन्द्र" नाटक मंथन १९२२ में बना। यह आर-संदेशर-रूप "पटवर्गिक" के आशय पर बनाया गया है, परन्तु इसका अनुवाद नहीं है। यह एक स्वतन्त्र प्रणय है, और भारतेन्दु की उल्टी रचनाओं में इसकी गणना है। इनमें महा-राज हरिश्चन्द्र का माधव-परीक्षा का वर्णन है। राजा के यहाँ पूर्व काल में जिन प्रकार कृषियों का आदर होता था, वह इनमें पूर्ण रूप से दिखलाया गया है। नरतरुणा सेना के मन्त्र ने अपने बली विरोध का विवरण कथ्य दिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की मत्स्यविजया इतनी बढ़ा हुई थी कि मन्त्र ने भी





























हिन्दी और अनुवाद नाटक

लेखक—डॉ० लक्ष्मण स्वरूप एम० ए० पी० एच० डॉ०

बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य में एक नए युग का सूत्रगत हुआ है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आज्ञान्विता लेखनी का प्रभाव केवल बंगाल पर ही नहीं है किन्तु नारे भारतवर्ष पर है। डॉ० कविता भी अपनी मर्यादा का अतिक्रम कर रही है। फारसी आदर्शों का अनुकरण अब छूटना जाना है। सर मुहम्मद इक़बाल डॉ० कविता ने इसकी पुरानी हड्डियों में नए जीवन का संचार कर दिया है। हिन्दी में भी खंडों वाली का सम्प्रदाय खड़ा हो गया है। इस मत के अनुयायियोंकी दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। महाशय मैथिलीशरण गुप्त के काव्य इन मत को प्रेरित है। नहारय प्रेमचन्द की कहानियों में वाधार्यता का आभास दृष्टिगोचर होता है। नए युगका अभी प्रादुर्भाव नहीं हुआ, परन्तु निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि सूत्रगत हो चुका है। इन सूत्रगत के अस्तित्व पर विद्वत् स्थान-स्थान पर दिग्दर्शक हैं। एक लेख में—जो माहने रिव्यू, मार्च सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ था—मैंने बतलाया था कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रायः तब के लेखकों ने





रणाडोड़दास उदयराम—आधुनिक गुजराती नाटक का प्रकाशक रणदोड़ भाई उदयराम है। उसने संस्कृत के कई नाटकों का गुजराती में अनुवाद किया। उसका हरिश्चन्द्र नाटक बहुत लोक प्रिय हुआ, और उसका 'ललिता दुःख दर्शक' गुजराती का इला सामाजिक दुःखान्त नाटक है। इसके बाद गुजराती में कई नयी नाटक मण्डलियों का उदय हुआ। दुःख का विषय है कि दुःख से गुजराती नाटक जो सफलता से खेले जाते हैं, प्रकाशित ही होते।

लहर पहुँचनी रुढ़ी हैं, परन्तु उनमें गूँहार नात्र होता है, वर्ण-विन्यास नहीं होता। अत्रएव ऐसे शब्द को 'ध्वन्यात्मक' कहते हैं, क्योंकि वह ध्वनि पर ही अवलम्बित होता है। दूसरा वर्णात्मक शब्द वर्ण-विन्यास-युक्त होता है।

ध्वन्यात्मक शब्दों में कितना आकर्षण है, यह अविदित नहीं। बाघों का मधुरवादन, पक्षियों का फलकृजन, कमनीय कण्ठों का स्वर, कितना हृदय-विमोहक है, यह सब जानने हैं। शैल सादी कहते हैं—

'सुन्दर सुन से मधुर ध्वनि कहीं उत्तम है। वह आनन्दित करती है, और इससे प्राणों की पुष्टि होती है। वास्तवों के कण्ठ की कृष्ण क्या स्वर्गीय सुधा नहीं बरसाने? सुरलीनगोहर की सुरली क्या पादप एवं लता-वेलियों तक को स्तम्भित नहीं करती थी? कविवर सुरदास जी की 'सुनहु हरि सुरली मधुर बजाई' कितना मनाहर है।

क्या नट को तुमड़ी का नाद सुनकर सर्प विह्वल नहीं हो जाता? क्या बधिक की वीणा पर हरिण अपना प्राण उत्सर्ग नहीं कर देता? ध्वनि अपार शक्तिमयी है, अतएव ध्वन्यात्मक शब्द भी प्रभावशालिना में कम नहीं। परन्तु वर्णात्मक शब्द उससे भी लोकोत्तर है। संसार का साहित्य, जो समस्त सम्य-ताओं का जनक है, वर्णात्मक शब्दों का ही विभूति है। इसी-लिये ध्वन्यात्मक ने वर्णात्मक शब्दों का महत्व अधिक है।

व्यवहार में देखा जाता है कि जिसको वाचशक्ति जितनी बढ़ी और सुसंगठित होती है, संसार में उसको उतनी ही महत्ता मिलती है। 'वाच की करामत' प्रसिद्ध है। वचन-रचना

अपूर्व आनन्द का समुद्र उमड़ रहा है, और उसमें लोग मग्न हो रहे हैं. हाथ-पाँव मार रहे हैं, उछल रहे हैं और जितना ही रस का पान कर रहे हैं, उत्तरोत्तर उनकी तृषा उतनी ही बढ़ती जा रही है।

वरुणस्वर, मधुरध्वनि, और वचन-रचना के अतिरिक्त वेश-विन्यास, भावभंगी, कथन-शैली इत्यादि का प्रभाव भी हृदय पर पड़ना है। इनकी सहकारिता से वचन-रचना अपने भावों को अधिकाधिक पुष्ट कर सकती है। कर-संचालन, अंग-संचालन, अथवा अंगुलि-निर्देश से अनेक अस्पष्ट भाव हो जाते हैं और कितनी ही अव्यक्त बातें व्यक्त बनती हैं। नृत्त अथवा नृत्य एव अभिनय के ढंग की अनेक कलाएँ भी यथावसर भावपुष्टि का साधन बनती रहती हैं। अनएव इनकी उपयोगिता भी अल्प नहीं। जय ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक शब्द अंग संचालनादि अन्य साधनों और कलाओं के आवार से किन्ती भाव को पुष्ट करते हैं, उसको वास्तविक पुष्टि उसी समय हानी है और साहित्य के रस रस की यथार्थ उत्पत्ति भी प्रायः तमः होती है, जो सहृदय-हृदय-संवेद्य माना जाता, और जिसका सुख प्रज्ञानन्द समान कहा जाता है। इसीलिये प्रायः दृश्य काव्यों द्वारा ही साहित्यिक रस की नीमांसा की गई है, क्योंकि उसने प्रायः सभी साधनों का समाकरण होता है।

रस की उत्पत्ति

यह स्वाभाविकता है कि ननुष्य ननुष्य के सुख ने सुखी और उसके दुःख से दुखी होता है। संबंध-विरोध होने पर इसकी मात्रा

रति आदिक स्थायी भावों के आधार नायक-नायिका, 'आलम्बन' और उनके उद्योग करने वाले, चंद्र, चाँदनी, मलय-पवन आदि 'उद्योग' कहलाते हैं।

'रति आदिक स्थायी भावों का जो अनुभव कराते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं।'

'रति आदिक स्थायी भाव में आविर्भूत और तिरोभूत होकर जो निवेद आदि भव अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं, उन्हें विशेष गति से संचरण करते देखकर संचारी कहा जाता है।'

मानव के हृदय में वासना अथवा संस्कार-रूप से अनेक भाव मदा उपस्थित रहने हैं, वे किसी कारण-विशेष द्वारा जिस समय व्यक्त होते हैं, उसी समय उनकी उपस्थिति का पता चलता है। इन भावों में जिन में अधिक म्दिरता और स्थायिता होती है, जो किन्हीं भी काव्य नाटिकादि में आशोपान्त उपस्थित रहते हैं, प्रधानता और प्रभावशालिता में औरों में उत्कर्ष रखते हैं, नाय ही जिनमें रस-रूप में परिणित होने की शक्ति रहनी है, उनको स्थायी भाव कहा जाता है।

"जैसे ननुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु, वैसे ही नव भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ होता है।" - भरत मुनि

शृंगार, हास्य, करुण्य आदि नव रसों के जनक रति, हान्त, शोक आदि नव स्थायी भाव हैं। इन स्थायी भावों में से कोई एक जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की सहायता से लोकोत्तर आनन्द रूप में परिणत होकर व्यक्त होता है, तब उसको 'रस' संज्ञा होती है।

स्थायी भाव के कारण को विभाव, वार्य को अनुभाव और मद्-
कारों को संचारी भाव कहते हैं।

रसारवादन प्रकार

आप लोगों को हमका अनुभव होगा कि रामलीला के दृश्यों
का सबसे हृदय पर समान प्रभाव नहीं पड़ता। कोई उनको देखकर
अत्यंत विमुग्ध होता है, कोई अल्प और कोई नान-मात्र को।
रस का अपिचारी सबसे हृदय नहीं होता। जिनमें भावुकता
नहीं—जिनकी वाग्म्या रस-प्रदृश्यापिचारिणी नहीं—और जिनकी
संस्कृति में रसजानुवृत्त साधनाएँ नहीं; उनके हृदय में रस की
उत्पत्ति नहीं होती।

समस्त साधनों से उपस्थित होने भी जिनके हृदय का स्थायी-
भाव समानध्य व्यक्त नहीं होता, उनके हृदय में रस की उत्पत्ति
होती ही नहीं। रस की उत्पत्ति होगी जब स्थायी भाव व्यक्त
होकर विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के साथ संचालन प्रदीप्त
हो जायगा।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि स्थायी भाव के व्यक्त होने का
क्या अर्थ? हमारी धारणा यह है कि यह दर्शकों के रसिभाव को समझ
करों नहीं प्राप्त होगी।

जिन्होंने स्थायी भावना संचारी भाव से, वे समस्त-भर में सदैव
मानवभाव के हृदय में बसे ही विभावान्तर रहते हैं, जैसे दर्शकों में पाए।
कहा जाता है कि 'संस्कृति हृदय', विमुग्ध हृदय को पाए। इन्होंने
एक ही विधि ही है। इसी प्रकार भावोत्पत्ति से विभिन्न भावोत्पत्ति

लगा, त्यों-त्यों नई-नई धारणाएँ हुईं और एक के बाद दूसरे नव प्रकट होने लगे। किसी ने कहा—“विभाव अनुभाव और संचारी भाव तीनों मिलकर इसकी सृष्टि करते हैं, क्योंकि वे परस्पर अन्योन्याश्रित हैं।” किसी ने कहा—“तीनों में जो घनत्कारी होगा, उसी की रस-संज्ञा होगी, अन्यथा किसी की नहीं।” जिस समय यह विवाद चल रहा था, उसी समय महानुनि भरत ने यह व्यवस्था दी कि विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। किन्तु यह उन्होंने नहीं बतलाया कि इन तीनों का संयोग किसके साथ होने से, परस्पर होने से अथवा किसी अन्य के साथ होने से उन्होंने लिखा है—

“जिस प्रकार गुड़ादिक द्रव्य व्यंजनो और ओषधियों से विविध प्रकार के पानक रस बनते हैं, वैसे ही अनेक भावों से युक्त होकर स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त होने हैं।”

विभाव, अनुभाव और संचारी-भावों का जब स्थायी-भावों से संयोग होगा, तभी रस की उत्पत्ति होगी। रस किन्तु में और वैसे उत्पन्न होता है, इस बात का निर्णय महानुनि भरत ने अपने उल्लिखित सूत्र में स्पष्टनया कर दिया है। किन्तु इनके अर्थ में ही मतभिन्नता हो गई, इन्हींसे विवाद कुछ दिन और चला। भट्ट-लोल्लू, शंभुक, भट्टनाथक मन्मथ, अभिनवगुप्त, जगन्नाथ आदि अनेक विद्वानों ने इस विषय पर अपने विचार लिखे हैं।

रस का विषय बड़ा बहसमय है, कुछ सर्वज्ञ विद्वानों की परमा है कि जब तक रस की उचित नींवना नहीं हुई। जो हो, नि

जब वह उन्हें वन जाने के लिए प्रस्तुत देखती है और उनके मुख की ओर ताकती है, आठ आठ आँसू रोने लगती है। फिर जब भगवान् रामचन्द्र भगवती जानकी को वन की भयंकरता बतलाने लगते हैं, उस समय न जाने कहीं का भय आकर उसके जी में समा जाता है। उस समय तो वह और भीत होती है जब जनक-नन्दिनी के कुसुमादभि कोमल कलेवर पर दृष्टिपात करती है। किन्तु जनता को ये समस्त दृश्याँ क्या उसे दुःखभागिनी बनाती हैं, नहीं, कदापि नहीं। वरन् प्रत्येक दृशाओं में वह विचित्र सुख और आनन्द का अनुभव करती है। क्यों ? इसलिये कि जिस संस्कृत से उसका हृदय संस्कृत है, उसके चरितार्थ करने की उसमें बड़ी ही सुगुणकारी सामग्री उसको मिलनी है। दूसरी बात यह कि मानसिक भावों को जिस समय जिस रूप में परिणत होना चाहिये, उस समय उसके उस रूप में परिणत होने से ही आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है, अन्यथा चित्त बहुत तंग करता है और यह ज्ञात होने लगता है कि हृदय न जाने किस चोक से दबा जा रहा है ! तीसरी बात यह कि अभिनय करने के समय अभिनेता अपने पार्ट को जब इस मार्मिकता से करता है कि अनजो और नकली का भेद प्रायः जाता रहता है, तो उस समय दर्शकों को जो आनन्द होना है, वह भी अमूर्व ही होना है। चाहे यह अभिनय कस्य रस का हो, चाहे वीभत्स या भयानक रस का। कारण इसका यह है कि उन समय की अभिनेता की स्वहर्मगुणा और अद्भुत अनुदर्याशीलता चुनचाप उत्तर विचित्र प्रभाव डाले बिना नहीं रहता।

भी निस्सन्देह बिगड़ा होगा, इसलिये अनुभाव भी उसमें मिले और तीनों के आधार से ही रस की सिद्धि हुई ।

केवल अनुभाव द्वारा रस विकास—

टपटप टपकत सेदकन अंग अंग थहरात ।

नीरजनयनी नयन में काहें नीर लखात ॥२॥

स्वेद विन्दु का टपकना, अंगों का कम्पित होना, अस्त्रों में चल आना अनुभाव है, और इन्हीं का वर्णन दोहे में है । क्विबु कारण अप्रकट है, किसी विभाव के कारण ही ऐसा हो रहा है, चाहे वह आलम्बन हो अथवा उद्दीपन, अतएव अनुभावों द्वारा ही विभाव की सूचना मिल रही है । किसी श्रम, आवेग, चिन्ता और शंका के द्वारा ही ऐसी दशा होने की सम्भावना है, अतएव संचारी का उद्बोधन भी उसी से हो रहा है ।

केवल संचारी द्वारा रस का आविर्भाव—

करति सुवारस पानसी रस दस है सरसाति ।

कत गयंदगतिगामिनी उमगति आवति जाति ॥३॥

इस दोहे में हर्ष और औत्सुक्य पूर्ण मात्रा में मौजूद हैं, जो कि संचारी हैं । ये ही उस विभाव की ओर भी संकेत कर रहे हैं जो उनके आधार हैं । उमग-उमग कर आना-जाना अनुभाव के अप्रदूत हैं ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तीनों के द्वारा ही रस की उत्पत्ति होती है, किसी एक के द्वारा नहीं । जहाँ इनमें से कोई एक या दो होता है, वहाँ आक्षेप द्वारा शेष दो या एक का भी प्रत्यक्ष हो जाता है ।

रसाभास

रस जब अनौचित्य से प्रकृत होता है, तो उसे रसाभास कहते हैं। रसभंग होने पर ही रसाभास होता है और अनौचित्य ही रसभंग का कारण है। देश, काल पात्र एवं सामाजिक आचार विचार और व्यवहार के अनुसार अनौचित्य अनेक रूपरूपाय है, फिर भी लक्ष्य की ओर दृष्टि आकर्षण के लिये, उसके कतिपय रूपों का वर्णन मिलता है।

रसाभास के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं

शैश्व रसाभास यथा

दास की वैश्या की को मांसम हन्वान

‘दास’ शब्द कायी व हो जायि हो दास ।

‘रसम’ का प्रयोग ‘रस’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

‘दास’ शब्द का प्रयोग ‘दास’ शब्द के लिये किया गया है।

योग्य है कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाय वह उही है। वे समस्त विश्व-विभूतियाँ पवित्र झूलिये हैं कि उनका दर्शन निर्दोष है और वे लोकोत्तर आनन्दमय हैं। यह शृंगार का महात्म्य है।

जब रम शृंगार को रमत्व प्राप्त हो जाता है, तो मोना और सुगंध भी बटावन परिहार्य होती हैं, उन समय वास्तव में मयि-काश्चन योग उपस्थित होता है, निर्जीवताय जीवन बन जाता है और स्वर्ग बलम रवि-विराट-मान्त !!

क्या इन बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने पर यह नहीं स्वाभाविक बनता कि शृंगार रम की परिश्रम और नहत्याओं के विषय में जो बचन पिछा गया, वह सत्य और दुःखमयक है।

शृंगार रम की व्यापकता

भारत में जो पवित्र, ज्ञान, कथन और दर्शनीय हैं, उनमें शृंगार रम का विधान है, इस बचन में ही शृंगार रम विद्वान् व्यापक है, स्पष्ट हो जाता है।

प्राणियों में मनुष्य सर्वोत्तम है। जब उनकी कोर दृष्टि जाती है तब शृंगार रम की व्यापकता स्पष्ट प्राणियों की व्यवस्था करने की दिशि पाई जाती है। किसी किसी प्राणी में शृंगार रम का बोझ-बोझ काय रूप ही प्रकट होता जाता है, प्राणु मनुष्य काय व्यवस्था कीदिष्ट (जिसे) मानव जीव के विधान है जन्मों के भी। दर्शनीय किसी जीवों के विधान है जन्म सुखों के भी। जिसका व्यवस्था और दृष्टनीय रूप के ही है, जिसका संदेश का बोझ है सुखों की।

सुख-सुखर विद्वान्, मनुष्य के व्यवस्थापक रूप

